Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.shisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2023 SHISRRJ | Volume 6 | Issue 6
ISSN : 2581-6306
doi : https://doi.org/10.32628/SHISRRJ

प्राचीन भारतीय गणतन्त्र व्यवस्था में शासित राज्यों का स्वरूप एवं महत्व

डॉ0 विजय कुमार
विभाग प्रभारी एवं असि0 प्रोफेसर–प्राचीन इतिहास विभाग, इ0 सि0 स0 सं0 से0 राजकीय महाविद्यालय, पचवस, बस्ती।

Article Info

Publication Issue :
November-December-2023
Volume 6, Issue 6

Page Number : 12-17

Article History
Received : 01 Nov 2023
Published : 11 Nov 2023

शोध सारांश – प्राचीन भारत में प्रारम्भिक वैदिक जन और कुल; रक्त सम्बन्ध के आधार पर संगठित थे। समूहों के सदस्यों की स्वतन्त्रता और स्थानीय स्वायत्तता बनी रही, यद्यपि उन्होंने किसी एक परिवार के मुखिया के प्रति निष्ठा स्वीकार कर ली। युद्ध और विजय के भावना के साथ ऐसे संगठनों के सुरचित उपविभाग अस्तिव में आये और वे वैदिक साहित्य में गण, व्रत, संघ, विशः आदि शब्दों से जाने जाते है। परिस्थितियों के बदलने से विशः का स्वरूप बदल गया और आनुवांशिक मुखियों के प्रति निष्ठा राजतन्त्री अनुशासन में विकसित हो गयी। वैदिक साहित्य के इन गणसंघों में एक केन्द्रीय सत्ता होती थी जिसके शासक जन्मना होते थे। इस कारण वंशावलियों का विशेष महत्व था चाहे वे काल्पनिक ही हों। प्राचीन समय में गणसंघों में शासक और शासित वर्ग थे जिसमें शासक कुछ ऐसे वंश थे जिनके पास शक्ति थी तथा शासित वर्ग में सामान्यतः श्रमिक होते थे, जिनका शासकों से कोई रक्त सम्बन्ध नहीं होता था। श्रमिकों में वे लोग थे जिन्हें किसी स्थान विशेष पर, शासक वंशों द्वारा हराकर वहीं बसा रहने दिया गया हो या दूसरे स्थानों से बन्दी बनाकर लाये गये हों अथवा मजदूरी के लिए बुलाए गये हों। प्राचीन भारत में राजतन्त्र अपने कई रूपों में में प्रचलित था। इनमें से कुछ में तो सर्वोच्च सम्प्रभु राजा होते थे। राजतन्त्रों के साथ–साथ अनेक प्रकार के गणतन्त्रीय राज्य में प्राचीन काल से विद्यमान थे। अनेक प्रकार के राजतन्त्रीय व गणतन्त्रीय राज्यों की प्रकृति तथा प्रशासन में परस्पर भिन्नता थी। पाणिनि कृत महाभाष्य में संघ को गण के अर्थ में लिया गया है (संघो धौ गण प्रशंसयोः)। प्राचीन समय में संघ का बोध होता था और पाणिनि के समय तक धार्मिक संघ ने महत्व धारण न किया था। कात्यायन ने पाणिनी के सूत्र की व्याख्या करते हुए यह बताया है कि क्षत्रिय जाति एक राज्य और संघ राज्य दोनों प्रकार की हो सकती थी यहाँ संघ के तात्पर्य को जानना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। संघ का अर्थ यहाँ केवल कुछ लोगों का योगमात्र नहीं है वरन् यह एक ऐसा योग है जिसमें व्यक्ति कुछ निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक साथ मिलते हैं। उद्देश्यों की विभिन्नता के आधार पर संघों को भी विभिन्न रूपों से विभाजित

Copyright © 2023 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)** which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium for non-commercial use provided the original author and source are credited.

किया जा सकता है जिसके परिणामस्वरूप प्राचीन भारतीय गणतन्त्र व्यवस्था में शासित राज्यों के स्वरूप एवं महत्व में भी भिन्नता रही।

कूट शब्द–मात्स्यन्याय, आयुधजीवी, राजशब्दोपजीविनः, संस्थागार, भांडागारिक, विशेष, ग्राम–भोजक।

प्राचीन भारत में गणतन्त्रात्मक व्यवस्था विद्यमान थी।[1] अल्तेकर महोदय के अनुसार आधुनिक लोकतन्त्र की भाँति प्राचीन भारतीय गणराज्यों में शासनसूत्र सामान्य जनता के हाथ में नहीं था।[2] ऋग्वैदिककालीन जनात्मक गण ही कालान्तर में गणतन्त्रीय राज्य के उदय का कारण बने। ऋग्वेद में 46 बार, अथर्ववेद में 9 बार तथा ब्राह्माण ग्रन्थों में अनकों बार गण शब्द का प्रयोग हुआ है।[3] संघ, गण का पर्यायवाची था जिसमें कई गण सम्मिलित होकर एक संघ का निर्माण करते थे।[4] गणराज्यों के नागरिकों के अधिकार समान होते थे।[5] जायसवाल के मतानुसार उत्तरवैदिक काल में हिन्दू गणतन्त्र सामुदायिक स्वशासन का दूसरा उदाहरण है तथा राजा–हीन शासन के विभिन्न रूपों वाले हिन्दू राज्यों का वर्णन जाति के सांवैधानिक इतिहास में एक महान अध्याय है।[6] ऋग्वैदिककाल में गण से अभिप्राय जनात्मक व्यवस्था से ही प्रतीत होता है। इस सन्दर्भ में देवीदत्त शुक्ल का विचार है कि प्राचीन भारत में राज्य उत्पत्ति जनतन्त्र के रूप में हुई थी। इनमें कुछ दोष उत्पन्न होने (यथा– मात्स्यन्याय की स्थिति, दण्ड के अभाव में प्रशासनिक तन्त्र का अभाव इत्यादि) से शासन का रूप जनतन्त्र से राजतन्त्र की ओर अग्रसर हुआ।[7] इस प्रकार गण के प्रधान गणपति का पद राज्य में परिर्वतित हो गया और जनात्मक गणतन्त्र राजतन्त्र में।[8] परन्तु डा0 अल्तेकर ने कहा है कि वैदिककाल में नृपतन्त्र ही सर्वत्र प्रचलित था।[9] मेगस्थनीज के अनुसार चतुर्थ शती ई० पू० में भारत में एक ऐसी परम्परा का प्रचलन हुआ जिससे राजतन्त्र के बाद प्रजातन्त्र का विकास हुआ। डा० शिवस्वरूप सहाय के अनुसार इसीकारणवश पुराणों में पांचाल, विदेह आदि राजतन्त्रों का कालान्तर में गणतन्त्र में परिर्वतित होने का वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त रामायण में जहाँ कहीं भी गणतन्त्रों का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं है, वहीं महाभारत[10] में मशक, मानस, मदंग जैसे ऐसे राज्यों का विवरण मिलता है, जहाँ न कोई राजा था न दण्ड और वहाँ के लोग स्वधर्म में संलग्न थे।[11] ऐसे वैराज्यों को डा० जायसवाल प्रजातन्त्रीय राज्य मानते हैं। बंद्योपाध्याय महोदय के अनुसार गणराज्यों का अध्ययन अभिरूचिपूर्ण है और यह दिखाता है कि प्राचीन भारत में केवल एक व्यक्ति के हाथों में दैवी सत्ता के स्थान पर बहुलवादी राजनीतिक अनुशासन का क्रमिक रूप से विकास हुआ।[12]

प्राचीन समय में संघ का अर्थ केवल कुछ लोगों का योगमात्र नहीं वरन् यह एक ऐसा योग माना गया जिसमें व्यक्ति कुछ निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक साथ मिलते हैं। उद्देश्यों की विभिन्नता के आधार पर संघों को भी विभिन्न रूपों से विभाजित किया जा सकता है। जैसे धार्मिक संघ (बौद्ध संघ), व्यापारिक संघ (श्रेणी), शस्त्रोपाजीवी (हथियारों पर जीवित रहने वाले) आदि। इस प्रकार के संघों की कोई राजनीतिक प्रकृति नही होती। विशेष ऐसे अन्य संघ भी होते हैं जो एक प्रदेश विशेष की शासन व्यवस्था का संचालन करने के लिए मिले हुए लोगों के संयोग होते हैं। इसी प्रकार के राजनीतिक संघों को कात्यायन द्वारा एक राज क्षत्रिय कबीलों का विपर्यय माना गया है। आयुधजीवी संघों में प्रमुख उदाहरण मालव गण का उल्लेख किया जा सकता है। नामकरण के आधार पर शस्त्र से जीविका चलाने वाले लोगों का संघ इसे बताया जा सकता है। परन्तु जायसवाल महोदय के अनुसार आयुधजीवी से

अभिप्राय उस गणराज्य से है जिनके संविधान की प्रमुख विशेषता थी – युद्ध कला में निपुणता। कौटिल्य ने दो प्रकार के संघ राज्यों का वर्णन किया है। प्रथम प्रकार वह था जिसके शासक राजा की उपाधि धारण करते थे तथा द्वितीय वह था जिसके शासक राजा की उपाधि से सुशोभित नही थे। अर्थशास्त्र में ऐसे दोनों प्रकार के राज्यों की तालिका दी गयी है।[13] संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि आयुधजीवि संघ के सदस्य सैन्य–कला में कुशल थे अर्थात् ये सैनिक वर्ग के संघ (गण) थे। यह विदित है कि क्षुद्रकों और मालवों के स्वतन्त्र समुदाय अपने सैन्य–कौशल के लिए विख्यात थे। इस प्रकार उपजीविन का सम्बन्ध उनकी संवैधानिक प्रथा अथवा उनके संविधान की प्रमुख विशेषता से है वैदिकोत्तरकाल में मध्यगंगाघाटी के कुछ जनपदो ने एकतन्त्र के स्थान पर गणसंघ पद्धति को अपना लिया था। गणसंघों में राजा का पद मात्र प्रधान के पद को सूचित करता है।[14] गणसंघों में राजकुल क्षत्रिय होते थे और शेष क्षत्रियेतर जन होते थे। राजकुल के सदस्यों को राजा कहते थे जो अभिषिक्त वंशीय क्षत्रिय होते थे।[15] प्रत्येक परिवार के प्रधान को राजा कहा जाता था।[16] राजा की उपाधि धारण करना (राजशब्दोपजीविनः) संघ की विशेषता थी।[17] राजशब्दोपजीविनः गणराज्यों की प्रमुख विशेषता थी कि वहां के प्रत्येक सदस्य स्वयं को राजा कहते थे राजकुल के सभी राजाओं की स्थिति (अधिकार) समान थी।[18] परन्तु वृद्धजनों और युवाओं का अन्तर अवश्य माना जाता था।[19] किसी भी प्रकार का निर्णय मतों के गणना के आधार पर ही होता था।[20]

गणसंघों के अपने प्रतीक चिन्ह होते थे जो आहत मुद्राओं पर अंकित किये जाते थे पूग, व्रात और श्रेणी(21) जैसी व्यापारिक संघों की कार्यप्रणाली लगभग गणसंघों के समान ही होती थी। गणतन्त्र उत्तरवैदिककाल में सामुदायिक स्वशासन का दूसरा उदाहरण बन गये थे। प्राचीन भारतीय राज्यों को स्वेच्छाचारी एवं निरंकुश मानने वाले पाश्चात्य विद्वानों की जानकारी की दिशा में वास्तव में यह आश्चर्य जनक कड़ी है।[22] प्राचीन समय में जन नाम के अन्तर्गत क्षत्रिय वंश के राजकुल व्यक्ति ही आते थे न कि दास लोग।[23] गणराज्य के सम्बन्धी (परिजन) जो प्रायः परिवार के ही कम उम्र के होते थे, प्रारंभिक प्रशासन का कार्य करते थे।[24] गणराज्य के लिए उपराजा होते थे तथा सभा के सदस्यों के आसन निश्चित थे। सभा में "कोरम (न्यूनतम उपस्थिति) का पूर्ण होना आवश्यक था। सभा के सदस्य सभी राजकुलों के राजा होते थे तथा इसकी बैठकें संस्थागार में होती थी। सभा सर्वप्रथम किसी व्यक्ति को सभापति चुनती थी जो बैठक की अध्यक्षता करता था।[25] सभा के सदस्यों के सम्मुख प्रस्ताव रखकर बहस की जाती थी तत्पश्चात् तीन वाचनाएं करके प्रस्ताव पर मतदान होता था।[26] गणराज्य में न्याय प्रकिया में छह स्तर पर अपील होती थी तत्पश्चात अंतिम अपील गणमुख्य के सम्मुख आदेश के लिए प्रस्तुत की जाती थी।[27] गणराज्य में सेनापति, भांडागारिक जैसे महत्वपूर्ण पदाधिकारी होते थे जो गण के प्रति उत्तरदायी थे। यद्यपि गणराज्यों की स्थायी सेना नही होती थी।[28] प्राचीन ग्रन्थों में[29] गणराज्यों में प्रशासनिक नियन्त्रण के प्रतिनिधि भोजकों और अमच्चों (अमात्यों) का उल्लेख मिलता है।

सामाजिक जीवन और संगठन का पुराना स्वरूप जीवित रहा और कालान्तर में अन्य कई निगमात्मक निकाय, गण, श्रेणी अथवा पूग सामाजिक अथवा आर्थिक कार्यो के लिए अस्तित्व में आये।[30] मेगास्थनीज ने लिखा है कि बहुत सी पीढियाँ आने और जाने के बाद अन्त में प्रभुता (राजतन्त्र) भंग हुई और नगरों में प्रजातन्त्री शासन स्थापित हुआ। अर्थशास्त्र में गणों के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है, यद्यपि अर्थशास्त्र की रचना के समय तक, गणराज्य अतीत का अंग बन चुके थे ।

कुलसंघ गणराज्य की राज्य प्रणाली के विषय में वर्णन करते हुए सहाय महोदय ने लिखा है, इस प्रणाली में गणराज्यों में रहने वाले एक जाति के लोगों के कुलों से चुने गए सदस्यों द्वारा गणराज्यों का शासन होता था। यहाँ कुल से अभिप्राय परिवार से नही है वरन् जाति से है। ये प्रत्येक सदस्य अपने राजा को कहते थे। इनके आधीन शासन में सहायता के लिए ग्राम–भोजक, अमात्य तथा उपराज आदि होते थे। ये अपने में से एक प्रधान चुन लेते थे जो इनकी बैठक का प्रतिनिधित्व करता था। यह कितनी अवधि के लिए चुना जाता था ज्ञात नहीं। अंगुत्तर निकाय से ज्ञात होता है कि इसे जेठक कहा जाता था। इस प्रकार के गणराज्य उत्तर भारत में कई थे इनमें विशेष उल्लेखनीय है कपिलवस्तु का शाक्य गणराज्य जिसमें भगवान बुद्ध का जन्म हुआ था। उग्र और राजन्य राज्य प्रकार के राज्य गणतन्त्रीय होते थे। ऐसे राज्य की विशेषताओं है कि जब तक राज्य में राज्यारोहण से पूर्व शासक के राज्याभिषेक नही होता था, तब तक शासक के अस्तित्व को नही माना जाता था। राज्याभिषेक के समय शासकों को धर्मपूर्वक राज्य करने की शपथ लेनी पडती थी। लिच्छिवी तथा मल शासक इसके उदाहरण है। राजमुकुट धारण करने के पूर्व शासकों का राज्याभिषेक अनिवार्य समझा जाता था। इस वर्ग के राज्यों में पुरोहित का बड़ा महत्व होता था ।

नगर राज्य प्रणाली के अन्तर्गत किसी प्रमुख नगर को राजधानी बनाकर उसके निकटवर्ती भागों पर शासन किया जाता था। एरियन ने पश्चिमोत्तर भारत में न्यासा, शिवि, संगल, पिम्प्रसा आदि नगर राज्यों के अस्तित्व के बारे में लिखा है। डॉ० बेनी प्रसाद[31] ने प्राचीन भारत पर ग्रीक प्रभाव को बताते हुए लिखा है कि अश्वघोष ने अपने ग्रन्थ 'सौन्दरानन्दकाव्यम' में कहा है कि कुछ राजपुत्रों ने नगर स्थापित किया, परन्तु आवश्यक रहा कि यदि राज्य के मामलों को सुचारू रूप से चलाना है तो राजा का होना आवश्यक है अतः उन्होने अपने में से एक को जो आयु, अनुशासन तथा गुणों में श्रेष्ठ था, उसे शासक बना दिया गया। यहाँ नगर का तात्पर्य राज्य से है, इसका शासक निर्वाचित और इसकी उत्पत्ति लौकिक मानी जाती है। प्राचीन भारत में कभी–कभी गणराज्य आपस में मिलकर संघ का निर्माण कर लेते थे। इन्हें संघ गणराज्य कहा जाता था। वज्जि संघ और लिच्छवी–मल्ल संघ इसके महत्वपूर्ण उदाहरण है।[32] मुख्य रूप से इस प्रकार के संघ का निर्माण गणराज्य अपनी व्यवस्था तथा सुरक्षा के लिए करते थे। जैन तीर्थकर महावीर के मामा चेटक के नेतृत्व में 36 गएराराज्यों ने संघ का एक साथ मिलकर निर्माण किया था।[33] बेनी प्रसाद महोदय के अनुसार वैदिक काल में कुरू–पांचालों ने मिलकर एक शासक के अधीन अपना सम्मिलित–राज्य स्थापित किया था। महाभारत के क्षुद्रक और मालव राज्य का एक साथ उल्लेख मिलता है। सिकन्दर के आक्रमण का सामना करने के लिए इन्होंने राज्यों का एक संघ बनाया था, जो एक शताब्दी तक कायम रहा। यौधेय गणराज्य तीन उपराज्यों का संघ था। प्रायः संघ अल्पकालीन ही हुआ करते थे।

प्राचीन गणराज्यों के स्थायित्व के सम्बन्ध में व्यापक विवरण महाभारत के शान्तिपर्व के अध्याय 107 में वर्णित है – गणों में मन्त्रणा नही हो सकती, क्योंकि नीति निर्धारक व्यक्तियों की संख्या अत्याधिक होती है। गणों की दूसरी विशेषता यह है कि वे सब एक जाति या कुल के होते हैं, इसलिए वे दान और भेद से फूट जाते है अर्थात शत्रु उन्हें पराजित कर सकते है। यदि उसमें आन्तरिक एकता बनी रहती है तो वे समृद्धि प्राप्त करते हैं और तब बाहर वाले उनसे मित्र सन्धि करने का प्रयत्न करते हैं। ऐसा माना गया था कि गणों को सदा ही एकमत अथवा सम्मत होकर कार्य करना चाहिए। उनके बुद्धिमान लोगों के लिए यह उचित है कि यदि इस प्रकार का विवाद हो तो उसे शीघ्र ही दूर किया जाय। यदि विवाद और

भेद उत्पन्न होने पर ज्येष्ठ व्यक्ति ध्यान नही दें तो सदस्यों के बीच हिंसापूर्ण झगड़े हो जाते हैं। अतएव आन्तरिक खतरों से बचाव के लिए यह अति आवश्यक माना गया। गणों को शत्रुओं के साहस, बुद्धि अथवा स्वर्ण से नही हराया जा सकता है और न ही स्त्रियों के आर्कषणों से, परन्तु उन्हें आन्तरिक झगड़ो तथा विवादों द्वारा अवश्य हराया जा सकता है। उनके अस्तित्व का सिद्धान्त ही समन्वय है। महाभारत में माना गया कि आन्तरिक खतरों की तुलना में बाह्य खतरे महत्वपूर्ण हैं।[34] इस प्रकार प्राचीन भारतीय गणत्रन्त्र की सुरक्षा के प्रति भारतीय मनीषीयों की चिन्ता गणतन्त्र की महत्ता की द्योतक है। भारतीय विद्वानों(35) ने भारत के अतीत में आधुनिक विचारों और प्रजातन्त्र के नमूने, यहाँ तक कि सांसद पद्धति को देखने का प्रयत्न किया है। यद्यपि प्राचीन भारतीय राज्य में सुदृढ प्रजातान्त्रिक तत्व था और ऐसी संस्थाए भी थी जिनकी वर्तमान संसद के रूप से कुछ समानता थी परन्तु वास्तव में ये विशेषताएँ प्राचीन भारत की अपनी किस्म की थी।

सन्र्दभ

1. शान्तिपर्व, 107, 6–7
2. ए० एस० अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृष्ठ– 81
3. डा0 परमात्माशरण, प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार और संस्थाएं, पृष्ठ– 325
4. वासुदेव शरण अग्रवाल, पाणिनिकालीन भारतवर्ष, (अष्टाध्यायी का सांस्कृतिक अध्ययन), प्रथम संस्करण, पृष्ठ 430–31
5. 'जात्याचसदृशाः सर्वे कुलेन सदृशास्तथा।" – शान्तिपर्व, 108. 30
6. के. पी. जायसवाल, हिन्दू पॉलिटी, पृष्ठ – 21
7. देवीदत्त शुक्ल, प्राचीन भारत में जनतन्त्र, पृष्ठ – 17
8. डा0 परमात्मा शरण, प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थायें, पृष्ठ – 384
9. डा० ए० एस० अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृष्ठ – 53
10. महाभारत, भीष्मपर्व, 11, 35 – 39
11. डा0 शिवस्वरूप सहाय, हिन्दू राज्य और समाज, पृष्ठ – 53
12. एन० सी० बंद्योपाध्याय, डिवलेपमेन्ट ऑफ हिन्दू पॉलिटी एण्ड पॉलिटिकल थ्योरीज, भाग–1, पृष्ठ – 239
13. अर्थशास्त्र, प्रकरण 11, पृष्ठ– 376–79
14. रोमिला थापर, अनु० मंगलनाथ सिंह, वंश से राज्य तक, पृष्ठ– 68
15. पाणिनी, 6, 2.34,
16. महाभारत, सभापर्व, 14.2 में 'गृहे गृहे हि राजानः' कहा गया है; अर्थशास्त्र, 11.1
17. मल्लो के गणसंघ में पाँच सौ राजा थे। – मज्जिझम निकाय 1.231; दीघ निकाय, 3.207 ; वृज्जि संघ में सात हजार सात सौ सात राजा थे। – महावग्ग 8, 1.1.1 यही संख्या बहुत बाद कालान्तर में लिखे तिब्बति ग्रन्थ दुल्व में भी मिलती है – डब्लू0 डब्लू0 राकहिल, लाइफ ऑफ बुद्ध, लंदन, 1907, पृष्ठ–62, चेदियों के संघ में साठ हजार राजा थे। – चेतिय जातक सं0 422
18. महाभारत, शान्तिपर्व, 108.30

19. पाणिनी, 1, 2.65, 4, 1.162–63; दीघ निकाय, 3, 74 में वृद्धों के आदार व सम्मान पर बल दिया गया है।

20. पाणिनी, 4, 4.93

21. महाभारत, कर्णपर्व, 5.40

22. वी0पी0 शर्मा, स्टडीज इन हिन्दू पॉलिटीकल थॉट एण्ड इट्स मेटाफिजिकल फाउन्डेशन्स, पृष्ठ–31

23. कात्यायन श्रौतसूत्र, 4, 1.168, 2–3

24. दीघ निकाय, 2, 73

25. रोमिला थापर, अनु० मंगलनाथ सिंह, वंश से राज्य तक, पृष्ठ–69; वज्जियों की सभा, आठ राजकुलों का संघ थी।

26. महावग्ग, 9, 3.1–2

27. सुमंगल विलासिनी, 2.59

28. वज्जि जैसे शक्तिशाली गण की भी कोई स्थायी सेना का उल्लेख नही मिलता है दीघनिकाय, 2, 72

29. कुणाल जातक सं0 536;दीघनिकाय 1.7; 1.36; 3.64; अंगुतरनिकाय,2, 154 2, 279 30. एन० सी० बन्द्योपाध्याय, डिवलेपमेन्ट ऑफ हिन्दू पॉलिटी एण्ड पॉलिटिकल थ्योरीज, भाग–1, पृष्ठ – 85

31. डा० बेनी प्रसाद, दि स्टेट इन ऐन्शियेन्ट इण्डिया, पृष्ठ – 491

32. एच० सी० रायचौधरी,पॉलिटीकल हिस्ट्री ऑफ ऐन्शियेन्ट इण्डिया, पृष्ठ–19–25

33. राधाकुमुद मुकर्जी, हिन्दू सभ्यता, पृष्ठ–197

34. 'भेदमूलो विनाशो हि गणानामुपलक्षये।मन्त्र संवरणं दुःख हूनामिति में मतिः।।'–महाभारत, शान्तिपर्व, 107.8

35. एस0 एन0 मिश्रा, ऐन्शेन्ट इण्डियन रिपब्लिकस, पृष्ठ – 14